हमारी धरती, हमारा जीवन

दीवान सिंह नागरकोटी



उत्तराखण्ड के स्कूलों में पर्यावरण शिक्षा का विषय 'हमारी धरती, हमारा जीवन' औपचारिक रूप से पढ़ाया जा रहा है। इस विषय का शिक्षण, 1987 में प्रायोगिक आधार पर, अल्मोड़ा जिले के गाँधी इण्टर कालेज, पनुवानाओला में आरम्भ किया गया था। अब यह उत्तराखण्ड के 1000 से भी अधिक स्कूलों की 6वीं, 7वीं और 8वीं कक्षाओं में कृषि, हस्तकला और गृह विज्ञान के स्थान पर एक ऐच्छिक विषय की तरह पढ़ाया जा रहा है। ऐसा पहली बार हुआ है कि कुछ गैर–शासकीय संस्थाओं (उत्तराखण्ड सेवानिधि, गाँधी इण्टर कालेज पनुवानाओला तथा मीरटोला आश्रम) और केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने मिलकर स्थानीय पर्यावरण के विषय पर एक पाठ्यक्रम विकसित किया है। बाद में उसे मुख्यधारा की शिक्षा में शामिल किया गया। इस बीच उस पाठ्यक्रम को विशेषज्ञों के सुझावों और विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के अनुभवों के आधार पर चार बार संशोधित किया गया। उसे मैदानी खेतिहर जिलों के लिए भी उपयुक्त बनाया गया है।

शुरुआत में वह पहाड़ी क्षेत्र के 39 स्कूलों की 9वीं तथा 10वीं कक्षाओं में एक अतिरिक्त विषय की तरह रखा गया था। बाद में उसे केन्द्र तथा राज्य सरकारों के शिक्षा विभागों की अनुशंसाओं के आधार पर तथा एन.सी.ई.आर.टी. के विषय के विशेषज्ञों के सुझावों के आधार पर 6वीं से 10वीं कक्षाओं तक के लिए संशोधित किया गया। अब यह पहाड़ी जिलों के स्कूलों की 6वीं, 7वीं और 8वीं कक्षाओं में प्रारम्भ किया गया।

विषयवस्तु

गाँव की पर्यावरणीय व्यवस्था के आधार पर, इस विषय में संसाधनों की संवहनीयता (लम्बे समय तक बने रहने की क्षमता – सस्टेनेबिलिटी), मानवीय जरूरतों के बोझ को वहन करने की पर्यावरणीय क्षमता और पूरे गाँव के जैव–पारिस्थितिक तंत्र को एक सूत्र में जोड़ने वाली अवधारणा के रूप में अध्ययन किया जाता है। इसमें जमीन का अध्ययन, गाँव के नक्शे को निर्मित करना, मापने की तकनीकों और उनमें निहित गणित को समझना, गाँव का इतिहास, पेड़ों के रोपों को तैयार करना, उत्तराखण्ड की नैसर्गिक वनस्पति, मिट्टी का बनना, उसकी जल–धारण क्षमता, झरनों के बहाव को मापना, पानी की घरेलू खपत को नापना, वर्षा को मापना तथा आँकड़ों और जानकारियों का विश्लेषण करना, फसलों, जलाऊ लकड़ी, जानवरों के आराम करने के लिए बिछाने का चारा, घास, देसी खाद आदि को मापना, साथ ही गाँव को सहारा देने वाले क्षेत्र को फिर से हरा–भरा बनाना, टमाटर के पौधे तैयार करना, जैविक खेती और जमीन की सही माप करने के सिद्धान्त आदि विषय शामिल थे। ये सभी विषय कक्षा 6 से कक्षा 8 तक के 37 अध्यायों में समाहित किए गए हैं। इसके साथ ही पढ़ने की अतिरिक्त सामग्री भी प्रदान की गई है। इसके अलावा आसपास के गाँवों में कुछ प्रायोगिक अभ्यास कार्यों को करना भी आवश्यक बनाया गया है। कुछ अभ्यास कार्य स्वयं स्कूल में भी किए जा सकते हैं। विद्यार्थियों को समूहों में काम करना पड़ता है।

पर्यावरणीय शिक्षण : कुछ अनुभव

पर्यावरण की शिक्षा के क्षेत्र में आने के पहले मुझे शिक्षक–प्रशिक्षण का ज्यादा अनुभव नहीं था। 19 साल पहले 'उत्तराखण्ड सेवा निधि' में काम करना शुरू करने के बाद मैं पहले से कार्यरत शिक्षकों के लिए पर्यावरणीय शिक्षा प्रदान करने से जुड़ा। उसके पहले मेरा अनुभव विभिन्न क्षेत्रों, जैसे कि प्राथमिक शिक्षा, पर्यावरण तथा विकास आदि में शोधकार्य सम्बन्धी अध्ययन का रहा था। विद्यार्थी के रूप में वनों तथा पर्यावरण के मुद्दों पर हुए आन्दोलनों में भाग लेने के बाद मैंने श्री चण्डी प्रसाद जी द्वारा आयोजित पर्यावरण शिविरों में भाग लिया जिनमें मैंने पर्यावरण के मुद्दों के मूल तत्वों को समझा और सीखा। यह जरूर है कि मेरा बचपन ग्रामीण परिवेश में ही बीता था, इसलिए मुझे उसका जमीनी एहसास था। विभिन्न अध्ययन परियोजनाओं में भागीदारी करने से मुझे उत्तराखण्ड के विभिन्न भागों के 500 से भी अधिक गाँवों

में स्थानीय लोगों के जीवन को समझने का अवसर मिला। शुरुआत में 'हमारी धरती, हमारा जीवन' के पाठ्यक्रम को स्वीकारने में मुझे अड़चन महसूस हुई। पशुओं के द्वारा मुक्त रूप से चरने और अत्यधिक दोहन तथा जंगलों के कटने के कारण भूमि की गुणवत्ता खराब होने के दृष्टिकोण को समझने में मुझे कुछ समय लगा। पहले अपने पुराने अनुभवों के अनुरूप मेरी प्रवृत्ति ग्रामीण समुदाय का साथ देने की थी। पर जब मैंने प्राकृतिक घटनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों को समझा – जैसे कि चराई के प्रचलित तरीकों के कारण चारागाहों (की जमीन) का खराब होना और पशुओं के खाने के लिए पेड़ों की पत्तियों वाली डालों के काटे जाने जैसी गतिविधियों से उनका नष्ट होना – तो मेरी पूर्व धारणाएँ शीघ्र ही बदल गईं। लेकिन कुछ सवाल फिर भी बने रहे, जैसे कि बच्चों को खेतों में क्यों काम करना चाहिए और क्या सब लोगों के लिए पर्याप्त जमीन उपलब्ध है।

जब मैं मीरटोला आश्रम देखने गया तो वहाँ एम.जी. जैक्सन और माधव आशीष महाराज ने तर्क दिया कि जो बच्चे इस पाठ्यक्रम के माध्यम से सीखते हैं, वे जब डाक्टर, इंजीनियर या शिक्षक बनेंगे तो वे बेहतर कार्य करेंगे। यदि वे प्रशासनिक नौकरियाँ चुनते हैं तो वे अच्छा नियोजन करने वाले सिद्ध होंगे। जो अपनी पढ़ाई आगे जारी नहीं रख सकते या जो उपयुक्त रोजगार हासिल नहीं कर सकते, वे यहाँ सीखे गए कौशलों का इस्तेमाल करते हुए, अपने गाँवों में सार्थक जीवनयापन करते हुए रह सकते हैं। शिक्षकों, बच्चों और समुदाय के साथ काम करते हुए जो बुद्धिमत्ता मैंने प्राप्त की उसने मुझे शहरों, महानगरों और वैश्विक स्तरों पर व्याप्त पर्यावरण की समस्याओं को समझने की योग्यता प्रदान की। पिछले ग्यारह सालों से शिक्षकों के प्रशिक्षण के दौरान उनके साथ सीखना, बच्चों के साथ कक्षा में तथा कक्षा के बाहर चर्चाएँ करना तथा शिक्षकों के साथ निरन्तर संवाद करना, मेरे लिए एक सुखद अनुभव रहा है।

शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा समुदाय के बीच विचारों का आदान–प्रदान

उत्प्रेरक की भूमिका में शिक्षक

पर्यावरण शिक्षा के अपने अनुभवों को पीछे मुड़कर देखने पर, मैंने पाया है कि सीखने की इस प्रक्रिया में विद्यार्थी, शिक्षक और समुदाय एक–दूसरे की समझ के स्तर में संवर्धन करते रहते हैं। आरम्भ में जब शिक्षक अपने प्रशिक्षण के लिए आए तो देखा गया कि हवा, पानी और ध्वनि के प्रदूषण, पृथ्वी के धीरे–धीरे गरम होने (ग्लोबल वार्मिंग), वृक्षारोपण और वन्य जीवन के संरक्षण के बारे में जो कुछ कक्षा में पढ़ाया जाता था और जो किताब में दिया गया था, उसी जानकारी के अनुसार उनके दृष्टिकोण निर्मित हुए थे। इस नए पाठ्यक्रम का अध्ययन करने के बाद, शिक्षकों ने उन समस्याओं के बारे में प्रश्न पूछे जिनका उन्हें सामना करना पड़ता था। जैसे कि उनका गाँव बहुत दूर–दराज के इलाके में था, स्कूल के चारों ओर कोई दीवार नहीं थी, पानी उपलब्ध नहीं था, प्रायोगिक कार्य के लिए एक पीरियड बहुत कम था, गाँव वाले सहयोग नहीं करते थे आदि–आदि। परन्तु इन कठिनाइयों के बावजूद अधिकांश स्कूलों में शिक्षकों ने परिस्थितियों के विकल्पों की तलाश करने की पहल की। सामान्य दैनिक शिक्षण और प्रायोगिक कार्य को जारी रखते हुए उन्होंने गाँव के लोगों से संवाद करना शुरू किया। पढ़ाने की इस प्रक्रिया ने उन्हें अधिक सृजनात्मक बनने में मदद की। उसने शिक्षण की नौकरी में उनकी वास्तविक रुचि पैदा करने में भी सहायता की। इस अनुभव से प्रेरणा पाकर, अब उन्होंने स्वयं दूसरों को प्रेरित करने वालों की भूमिका अपना ली है।

अल्मोड़ा जिले के अरटोला में जूनियर हाई स्कूल के शिक्षक श्री केशर सिंह मनकोटी ने हमें बताया कि जब वे शुरू में वहाँ गए तो किसी भी खिड़की पर किवाड़ ही नहीं थे। उन्होंने गाँव के लोगों से सम्पर्क किया, पालकों की एक सभा आयोजित की और फूलों को उगाने तथा स्कूल की इमारत को सुधरवाने की गतिविधियाँ प्रारम्भ कीं। उन्होंने गाँव के इतिहास को चित्रित करने वाले और जंगली जानवरों के भटककर गाँवों में घुस आने के असली कारणों को दर्शाने वाले नाटक रचे और गाँव में उनका मंच पर प्रदर्शन किया। गाँव का समुदाय उनका बहुत प्रशंसक बन गया और उन्हें अपना पूरा सहयोग देने के लिए आगे आया। उन्होंने 'औसत समुद्र तल से ऊँचाई' की अवधारणा को समझाने का एक सरल तरीका ढूँढ़ निकाला जिसे बाद में पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। शिक्षा के प्रति उनके समर्पण को मान्यता देते हुए उनको राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अब वे अवकाश प्राप्त कर चुके हैं, पर वे अभी भी गाँव में सक्रिय रहते हैं।

लगभग 27 साल पहले श्री नरेन्द्र कुमार बहुगुणा चमोली जिले के छिन्का में शासकीय इण्टर कालेज में पर्यावरण शिक्षा पढ़ा रहे थे। वहाँ उन्हें इस विषय की शिक्षा को स्कूल

से बाहर गाँव में ले जाने का मौका मिला। एक शिक्षक और प्रधानाध्यापक के रूप में उन्होंने स्कूल को पर्यावरण से सम्बन्धित गतिविधियों का केन्द्र बना दिया। इनमें भागीदारी और सहयोग करने के लिए उनके द्वारा बुलाए जाने पर अनेक गाँवों के लोग उत्साहपूर्वक स्कूल में इकट्ठे हो जाते थे। समुदाय की भागीदारी के बल पर उन्होंने सीमान्त क्षेत्रों में स्थित मलारी और गमशाली गाँवों में वृक्षारोपण का एक बड़ा अभियान चलाया। महिलाओं की भागीदारी की सहायता से उन्होंने स्कूल में हजारों पेड़ लगाने का और बहुत से पेड़ों को बचाने का उदाहरण प्रस्तुत किया। उसके बाद वे शासकीय इण्टर कालेज लॉग्सी, गैरसैन के प्राचार्य के रूप में सक्रिय बने रहे। प्रधानाध्यापक के रूप में भी वे स्वयं गाँवों में किए जाने वाले प्रायोगिक कार्य में विद्यार्थियों के साथ शामिल रहते थे। शासकीय इण्टर कालेज, गैरसैन में पानी की कमी की समस्या को हल करने के लिए उन्होंने एक पॉलीथीन की पानी की टंकी बनवाई। फिर स्कूलों के जिला निरीक्षक (डिस्ट्रिक्ट इंस्पेक्टर) के रूप में वे शिक्षकों, प्रधानाध्यापकों और प्राचार्यों को प्रेरित करते रहे। वर्तमान में वे उत्तराखण्ड में स्कूलों के संयुक्त निदेशक (ज्वाइंट डायरेक्टर) हैं।

उत्तरकाशी जिले के वर्णीगाड में एक शिक्षक, सबेन्द्र सिंह कहते हैं कि 'शिक्षकों के प्रशिक्षण में शामिल होने से पहले मैं कुछ रचनात्मक करना चाहता था, पर मुझे उसके लिए कोई मौका ही नहीं मिलता था। मैं साल भर में केवल एक या दो सांस्कृतिक कार्यक्रमों में ही भाग ले पाता था। पर 'हमारी धरती, हमारा जीवन' विषय में प्रशिक्षित हो जाने के बाद, मुझे इस कार्य की दृष्टि मिली और उसमें सक्रिय होने का अवसर मिला। जब लोग स्कूल आते हैं और मेरे काम की प्रशंसा करते हैं, तो मेरा आत्मविश्वास बहुत बढ़ जाता है।'

हमारे पारम्परिक समाज में शिक्षा और प्राकृतिक संसाधनों के बारे में बहुत से अच्छे सामाजिक और नैतिक मूल्य हैं। लेकिन, साथ ही कई बहुत खराब रीति–रिवाज, बुराइयाँ और अन्धविश्वास भी हैं। इनके कारण समस्याओं के असली कारणों का पता लगाना मुश्किल हो जाता है। इसलिए, प्रचलित धारणाओं की अर्थपूर्ण तरीके से जाँच–पड़ताल करना और सार्थक बातों को प्रोत्साहित करना, साथ ही बुराइयों और अन्धविश्वासों पर से उनका भरोसा हटाना भी शिक्षा के दायरे में ही आता है। शिक्षक समाज का अभिन्न अंग होता है। चूँकि वह स्वयं कई पीढ़ियों से उसी समाज का हिस्सा रहा होता है, इसलिए वह उसमें प्रचलित अच्छी और बुरी रीतियों तथा उसके गुणों और दोषों से अछूता कैसे रह सकता है? परन्तु, जब भी शिक्षकों ने पूछताछ और जाँच–पड़ताल की प्रक्रिया का समुचित उपयोग किया है, तब उनके दृष्टिकोण और उनकी समझ में परिवर्तन हुए हैं। इस प्रकार प्राप्त होने वाला नया आत्मविश्वास बदलाव का सूचक होता है।

श्री मदन सिंह देवली पेटशल के उच्चतर माध्यमिक स्कूल में शिक्षक हैं। उन्होंने हमें बताया कि, 'पर्यावरण शिक्षा का विषय पढ़ाने से पहले अन्य लोगों की तरह मैं भी अन्धविश्वासों और अस्पृश्यता में विश्वास करता था। उनमें से कुछ को पानी की कमी और जलस्रोतों के सूख जाने का कारण मानता था। ऐसी धारणाएँ मेरे मन में मजबूती से जमी हुई थीं। उनकी सत्यता की जाँच करने का ख्याल भी कभी मेरे मन में नहीं आया, न ही मुझे उसका कोई अवसर मिला। मैं अपने मन में यह धारणा पाले हुए था कि यदि मासिक धर्म से गुजर रही महिलाएँ या प्रसूति काल में एकान्तवास कर रही महिलाएँ किसी जलस्रोत से पानी लेती हैं या उसमें नहाती हैं, तो उनका यह साधारण कृत्य ही पानी के बहाव को कम कर देगा या वह स्रोत सूख जाएगा। लेकिन इस विषय को पढ़ाने और उसके साथ प्रयोग करने की प्रक्रिया के दौरान, मुझे जलस्रोतों के बहाव के कम हो जाने या उनके सूख जाने के असली कारणों की जानकारी हुई, और मेरी सभी पुरानी धारणाएँ अपने–आप ही बदल गईं।'

हाथों से किए जाने वाले कामों को हमारे समाज में कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। शिक्षा ने हमें उससे और भी ज्यादा दूर कर दिया है। इसके कारण पालकों की यह राय बन गई है कि शिक्षा केवल किताबों के माध्यम से कक्षा के भीतर ही प्रदान की जा सकती है। शिक्षकों और विद्यार्थियों को स्कूल के समय में गाँव की ओर आता हुआ देखकर, गाँव वालों ने शिक्षकों से सवाल किया कि कक्षाओं में विद्यार्थियों को पढ़ाने के बजाय वे उन्हें गाँव में क्यों ला रहे हैं। ऐसे सवालों ने शिक्षकों को गाँव के लोगों के साथ सार्थक चर्चाएँ करने का अवसर दिया। इस तरह, बदलाव के लिए एक अभियान की शुरुआत हुई।

उन दिनों स्कूल का सत्र जुलाई में शुरू हुआ करता था, वार्षिक परीक्षाएँ मई के पहले पखवाड़े में समाप्त हो जाती थीं और जून में स्कूल बन्द रहते थे। मुझे वह ठीक दिन तो याद नहीं, पर वह मई का महीना था। मुझे कामा गाँव में जूनियर हाई स्कूल का पर्यावरण मेला देखने जाना था। गागस

घाटी के उपजाऊ खेतों को पार करने के बाद, मैं कामा गाँव पहुँचा। वहाँ से चढ़ाई के रास्ते पर लगभग एक किलोमीटर चलकर स्कूल पहुँचा जहाँ मेला शुरू हो चुका था। स्कूल का छोटा–सा मैदान पुरुषों, महिलाओं और स्कूल के बच्चों से ठसाठस भरा हुआ था जो आसपास के गाँवों से आए थे। मंच पर एक नाटक खेला जा रहा था। वह 8वीं कक्षा की पढ़ने की सामग्री पर आधारित था। उसमें टांगसा गाँव के महिला मंगल दल की गतिविधियों को चित्रित किया गया था जिनमें समुदाय के संसाधनों का उपयोग, प्रबन्धन और उनसे होने वाले लाभों को साझा करना जैसी बातें शामिल थीं। उस नाटक में दिखाया गया था कि किस प्रकार टांगसा गाँव की महिलाओं ने संगठित होकर गाँव की सामुदायिक भूमि में (जो पूरी तरह खराब हो चुकी थी और जहाँ भारी भू–स्खलन हो चुके थे) पेड़ लगाने, अपने जंगलों की रक्षा करने और दुधारू पशुओं को पालने के काम किए। यहाँ तक कि जब सूखा पड़ा तो उन्होंने दूसरे गाँवों के लोगों को पशुओं के लिए चारा भी वितरित किया। इस प्रस्तुतीकरण ने ग्रामीण समुदाय के मन पर गहरा प्रभाव डाला।

नाटक के समाप्त हो जाने के बाद कुछ महिलाएँ प्रधानाध्यापक से मिलने आईं। उन्होंने प्रधानाध्यापक से, जो खुद भी पर्यावरण विज्ञान के शिक्षक थे, पूछा कि जो भी नाटक में दिखाया गया था क्या वह सब वाकई में घटित हुआ था। प्रधानाध्यापक ने इसकी पुष्टि की और उन महिलाओं से इस पर चर्चा करने के लिए बाद में उनसे मिलने को कहा। इस घटना के दो साल बाद ही मेरा फिर से उस स्कूल में जाना सम्भव हो पाया। तब कक्षा में बच्चों से चर्चा करने के बाद, उनके शिक्षक श्री त्रिलोक सिंह ने मुझे मेरे पिछले दौरे की याद दिलाई, जब टांगसा महिला मण्डल के बारे में खेले गए नाटक के बाद कुछ महिलाएँ कुछ जानकारी माँगने के लिए आई थीं। वे महिलाएँ इडासेरा गाँव की थीं जो उन शिक्षक के गाँव से लगा हुआ था। फिर उन्होंने उनका यह किस्सा सुनाया।

उन महिलाओं ने उन्हें बताया कि इडासेरा में समतल और उपजाऊ जमीन है। सिंचाई के उद्देश्य से कामा गाँव की एक पुरानी पारम्परिक नहर को इडासेरा गाँव तक बढ़ा दिया गया। कुछ समय बाद उसको लेकर दोनों गाँवों के बीच विवाद हो गया। उसके बाद, विवाद के समाधान के लिए उन्हें कानूनी तौर पर सलाह दी गई कि वे दोनों गाँव एक दिन छोड़कर बारी–बारी से उस नहर का इस्तेमाल करें। इडासेरा ज्यादा बड़ा गाँव था जिसके कारण इस व्यवस्था से बहुत थोड़े परिवारों की सिंचाई की जरूरतें पूरी हो पाती थीं। कामा उससे छोटा गाँव था, इसलिए महीने में उनकी बारी के अधिकांश दिनों में पानी बेकार बहता था। इस वजह से इडासेरा गाँव के लोग उस नहर का रखरखाव करने के लिए बहुत इच्छुक नहीं थे। फिर भी, वे यह जानना चाहते थे कि जो कुछ टांगसा गाँव में किया गया था क्या उसे उनके गाँव में भी दोहराया जा सकता था। उन शिक्षक ने उन्हें इसके लिए पहल करके प्रयास करने को कहा और जरूरत पड़ने पर खुद भी मदद करने का आश्वासन दिया।

पर्यावरण मेले के कुछ दिन बाद इडासेरा की महिलाएँ इकट्ठी हुईं और उन्होंने अपना महिला मंगल दल गठित किया। उन्होंने हर परिवार से एक सदस्य को नहर की सफाई और रखरखाव के लिए आमंत्रित किया। रखरखाव के काम के लिए दिन सुनिश्चित किए और गाँव की पंचायत से उस नहर की मरम्मत करवाई। इसके बाद उन्होंने हर परिवार से 10 रुपए चन्दा लिया और एक कोष बनाया। इसी बीच में, महिला सिंचाई मण्डल ने एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। उन्होंने कामा गाँव के लोगों से बातचीत की जिनका नहर के ऊपर पहला और बराबर का हक था। उन्होंने कामा के ग्रामीणों से अनुरोध किया कि वे अपनी सिंचाई की जरूरतें पहले पूरी कर लें, फिर उसके बाद इडासेरा के लोगों को बाकी दिनों में पूरा पानी इस्तेमाल करने की अनुमति दें। कामा गाँव के लोग इसके लिए राजी हो गए। अब कामा के ग्रामीण महीने के 3-4 दिनों में नहर का उपयोग करते हैं और बाकी दिनों में इडासेरा के लोग उसका इस्तेमाल कर पाते हैं। इससे दोनों गाँवों के लोगों के सम्बन्धों को सुधारने में भी मदद मिली है।

कक्षा के बाहर सीखने का आनन्द

बच्चों को हमेशा बाहर की जाने वाली गतिविधियों से सीखने में, अपने चारों और की चीजों का निरीक्षण करने में और जमीन पर गाँव का नक्शा बनाने में आनन्द आता है। उन्हें गाँव के इतिहास के बारे में सीखना, उसकी घास, जंगल, फसलों, जमीन और पानी के बारे में जानना अच्छा लगता है। उन्हें जलस्रोतों की माप करने में भी मजा आता है। किताबों में उन्होंने जो कुछ पढ़ा है, उसका सम्बन्ध अपने आसपास की चीजों से जोड़ना, उसके बारे में सवाल पूछना और फिर दूसरे बच्चों के साथ उनके उत्तर खोजना भी उनको अच्छा लगता है।

चौखन के पूर्व–माध्यमिक स्कूल के विद्यार्थियों ने पेड़ों के पौधे तैयार करने के लिए उनके बीज इकट्ठे करने की एक योजना बनाई। अगले दिन सिंगारोली के बच्चे बीज लेकर आए, लेकिन लामकोट के बच्चों ने बताया कि उनके गाँव में बाँज के पेड़ों से उन्हें कोई बीज नहीं मिले। सिंगारोली गाँव के बच्चों द्वारा लाए गए बीजों का उपयोग करते हुए, उनको उगाने की प्रक्रिया आरम्भ की गई। जब बीजों को उगाने की सम्भावना पर चर्चा की जा रही थी, तब लामकोट की एक लड़की ने पूछा कि, “हमारे गाँव के बाँज के पेड़ बीज क्यों नहीं देते?”

फिर एक विद्यार्थी ने इस ओर ध्यान खींचा कि स्कूल के चारों और मौजूद पेड़ों पर भी कोई बीज नहीं थे। वे सब इसके कारणों की खोज करने लगे। फिर शिक्षक ने कक्षा में यह विषय उठाया कि ‘पौधे और पेड़ किस तरह मरते हैं?’ और विद्यार्थियों से जरूरत से ज्यादा पेड़ों के काटे जाने के खतरों पर चर्चा करवाई। सिंगारोली और लामकोट के बच्चों के लिए एक प्रश्नावली तैयार की गई जिसके माध्यम से उन्हें अपने गाँव के बुजुर्गों से उनके गाँवों के जंगलों की वृद्धि के इतिहास के बारे में पूछताछ करना थी। पशुओं की चराई इकट्ठी करने के प्रचलनों के बारे में सवालों को भी उसमें शामिल किया गया था। पेड़ों की शाखाओं में वार्षिक वृद्धि को भी नापा गया। पेड़ों और उनके भोजन के बारे में सबक सीखे गए और प्रयोग किए गए। शिक्षकों और गाँव वालों की सहायता से एक महीने तक जाँच–पड़ताल की गई। पता चला कि पेड़ों की शाखाओं को बार–बार जितना काटा जाता है कि वह उनकी वार्षिक वृद्धि से ज्यादा होता है, इस कारण पेड़ों और घासों का आगे बढ़ना रुक जाता है और वे बीज देना बन्द कर देते हैं। इस तरह प्रकृति का नवीनीकरण भी रुक जाता है और लम्बे समय तक ऐसा होने पर पेड़ और घास पूरी तरह मर जाती हैं। बरसात के मौसम में ऐसे स्थानों पर बारिश के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए एक योजना बनाने के लिए एक चर्चा भी आयोजित की गई।

देवलखेत बागेश्वर जूनियर हाईस्कूल के शिक्षक श्री उपाध्याय ने हमें बताया कि आरम्भ में उन्हें 6वीं कक्षा के भूगोल के पाठ में किसी स्थान की ऊँचाई की अवधारणा को पढ़ाने में कठिनाई महसूस हो रही थी। उन्होंने कहा कि, “मैं समझ नहीं पा रहा था कि ऊँचाई की अवधारणा को किस तरह समझाऊँ कि बच्चे उसे पकड़ सकें। उसके तीन ही दिन बाद मैंने पर्यावरण विज्ञान के एक शिक्षक को कक्षा के बाहर उसी अवधारणा पर विद्यार्थियों से चर्चा करते हुए पाया। स्वाभाविक था कि मैं उसमें उत्सुक हो गया। मैंने देखा कि शिक्षक ने एक चौड़े बरतन में पत्थर का एक बहुत बड़ा टुकड़ा रखकर बरतन की आधी से अधिक ऊँचाई तक उसे पानी से भर दिया था। उन्होंने समुद्र तल को शून्य तल मानने की अवधारणा को समझाया। फिर बरतन में पानी की ऊपरी सतह को समुद्र का शून्य तल मानकर और पत्थर को पर्वत या पहाड़ी मानकर, पैमाने का उपयोग करते हुए विभिन्न स्थानों की ऊँचाईयों को निकालना समझाया। अगले दिन मैंने पाया कि विद्यार्थियों ने ऊँचाई की अवधारणा को पूरी तरह समझ लिया था।”

इसके अलावा, शिक्षकों ने अपने ऐसे अनुभवों को आपस में साझा किया कि इस विषय से किस तरह उन्हें विद्यार्थियों को सामाजिक विज्ञान के विषयों तथा विज्ञान और गणित की अनेक अवधारणाओं को समझाने में मदद मिली।

सन्दर्भ:

- कक्षा 6, 7 तथा 8 के लिए ‘हमारी धरती, हमारा जीवन’, शिक्षा विभाग, उत्तराखण्ड एवं उत्तराखण्ड सेवा निधि पर्यावरण शिक्षा संस्थान, अल्मोड़ा, 2009
- एनवायरनमेंटल ऐजुकेशन: हमारी धरती, हमारा जीवन – सम एक्सपीरिएंसेज इन उत्तराखण्ड, उत्तराखण्ड सेवा निधि, अल्मोड़ा, 2005

दीवान नागरकोटी वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, अल्मोड़ा के सदस्य हैं और वे पर्यावरण विज्ञान पर काम करने वाले समूह में शामिल हैं। इसके पहले उन्होंने लखनऊ में गिरि इंस्टीट्यूट फॉर डेवलपमेंट स्टडीज में काम किया है, जहाँ उन्होंने सामाजिक और पर्यावरण के अध्ययनों से सम्बन्धित विभिन्न शोध किए। उन्होंने पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में 11 वर्षों तक उत्तराखण्ड सेवानिधि में भी काम किया है, जहाँ वे शिक्षकों के प्रशिक्षण में, पाठ्यपुस्तकों के पुनरीक्षण में और शिक्षकों को उनके कार्य–स्थलों पर सहयोग देने जैसे कार्यों में संलग्न रहे। वे कुमाऊँ विश्वविद्यालय से एग्रीकल्चर इकोनॉमिक्स में पीएच.डी. हैं। उन्होंने राष्ट्रीय दैनिक ‘हिन्दुस्तान’ के लिए लेखन भी किया है और वे कुमाऊँ यूनिवर्सिटी, अल्मोड़ा के पत्रकारिता विभाग में अतिथि अध्यापक भी रहे हैं। उनसे diwan.singh@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।